Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

हिन्दी उपन्यास – साहित्य एवं शिवानी

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

हिन्दी उपन्यास – साहित्य एवं शिवानी

Rimpy

Research Scholar, Singhania University Jhunjhunu, Rajasthan, India

----------♦----------

आधुनिक युग में गद्य की विविध विधाओं का विकास अधिक हुआ है। इन सभी गद्य–विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय, आकर्षक एवं प्राणवान विधा मानी जाती है। आज उपन्यास–साहित्य की जितनी अधिक उन्नति संसार की भाषाओं में हो रही है, उतनी अन्य किसी साहित्यांग की नहीं। क्योंकि उपन्यास जीवन के अनुभव का नवनीत प्रस्तुत करता है। बर्नाडबोटो के शब्दों में '' उपन्यास मानव के अनुभव की पिरिधि को बढ़ाता है। वह जादू के खेल की तरह जीवन के परत पर परत उघेड़कर हमारे सामने रखता है।''

अर्थात् उपन्यास, साहित्य का वह अंग है जो गद्य के माध्यम से सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करता है। उपन्यास को अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं। उपन्यास शब्द उप + न्यास पर से आया है। ' उप ' का अर्थ ' समीप ' और ' न्यास ' का अर्थ है 'रखना'। अर्थात् वह कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कहीं गई है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इसे '' उपपत्ति कृतोह्मर्थ तथा प्रसादनम् '' कहा है। अर्थात् किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से उपस्थित करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला उपन्यास कहा है।''

आज मुख्यतः अंग्रेजी के शब्द ' नोवेल ' के अर्थ में उपन्यास कहते हैं। मराठी में यह शब्द ' कादम्बरी ' कन्नड़ भाषा में ' कादम्बरि ' तमिल में ' नावल ' अर्थ में प्रचलित है।

उपन्यास को वर्तमान युग का गद्य महाकाव्य कहा गया है। इसकी अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। परिभाषा किसी वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने का प्रयत्न होता है। जो परिभाषा उसके स्वरूप को जितनी यथार्थता के साथ व्यक्त कर देती है, उसे उतना ही अधिक व्यापक माना जाता है। उपन्यास विधा में जितना वैविध्य है, उतना अन्य किसी विधा में नहीं है इसलिए उपन्यास की कोई सर्वमान्य परिभाषा कर सकना आसान नहीं है। जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें से कुछ पर विचार करना अनुचित न होगा। यूरोपीय विद्वान क्रोस को अनुसार ''उपन्यास उस गद्य आाख्यान को कहा जाता है, जो यथार्थजीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करें।''

कलारारीव के अनुसार '' उपन्यास यथार्थ जीवन तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवहार का चित्र है। उपन्यास की कसौटी यह है कि यह हमारी परिचित वस्तुओं और दृष्यों का चित्रण इस ढंग से करें कि वह सामान्य हो जाय और कम से कम उपन्यास पढ़ते समय पाठक को यथार्थ का भ्रम उत्पन्न हो जाय, पाठक उन्हें अपना समझने लगें।''

'' उपन्यास एक ऐसी कलाकृति है जो हमें एक जीवित जगत से परिचित करा देती है। यह जगत अनेक दृष्टियों से हमारे यथार्थ जगत के ही समान होता है और साथ ही उसका अपना निजी व्यक्तित्व भी बना रहता है।''

अनेक विद्वान उपन्यास को जीवन का दर्पण मानते हैं। प्रेमचन्द्र जी कहते हैं – '' मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र–मात्र मानता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाष डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''

डॉ. श्यामसुन्दरदास जी ने गद्यात्मकता पर बल देते हुए लिखा है–'' उपन्यास की कोटि में साधारणतः कल्पना–प्रसूत वह सम्पूर्ण कथा–साहित्य आ जाता है जो गद्य की रीति से व्यक्त किया गया है। उपन्यास वस्तुतः मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।''

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने उपन्यास को मानव–समाज की भावनाओं और चिन्ताओं की अभिव्यक्ति कहा है। '' साहित्य–क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा सामूहिक मानव–जीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव–जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अधिक अवकाष उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार '' वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके विभिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विस्तृत प्रस्तुतिकरण ही नहीं करते, आवष्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं। लोक या किसी जन–समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो मूढ़ और चिंत्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचररूप में सामने लाना और कभी–कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का कार्य है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह स्पष्ट है कि वास्तव में कोई परिभाषा उपन्यास के अर्थ को सम्पूर्ण अभिव्यक्ति देने में समर्थ नहीं है। परन्तु इतना कह सकते हैं कि उपन्यास मानव–जीवन का समग्ररूप से चित्रण करने वाली गद्य की विधा है। किसी भी गतिषील विधा को निष्चित परिभाषा में आबद्ध करना संभव नहीं है।

1.2 उपन्यास का महत्व :

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सषक्त विधा है। कारण यह है कि उपन्यास में मनोरंजन का तत्व तो अधिक रहता ही है साथ ही साथ जीवन को उसकी

www.ignited.in

बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाष होता है। उपन्यास का मानव–जीवन के यथार्थ से घनिष्ठ सम्बन्ध है। '' मनुष्य के जीवन की झाँकी और उसके चरित्र की विविध परिस्थितियों में प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का जितना सफल उद्घाटन इस साहित्यिक माध्यम द्वारा किया जा सकता है उतना अन्य साहित्यिक विधाओं द्वारा नहीं हुआ है। आधुनिक युग में उपन्यास की लोकप्रियता एवं सर्वाधिक महत्व का कारण भी यही है।''

प्राचीनकाल में मानव समाज के लिए जो महत्व महाकाव्य या ऐलिजाबेथ और विक्रमादित्य के युग के निवासियों के लिए जो महत्व नाटक का था उससे कहीं अधिक महत्व आज के युग में उपन्यास को प्राप्त हो रहा है। उपन्यास का यह महत्व त्रयोन्मुखी है– साहित्यिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक। इसे हम साहित्य का प्राण कह सकते हैं। साहित्य की हम कोई भी परिभाषा करें, भारतीय दृष्टि से इसमें लोकहित–भावना की अवस्थिति माननी ही होगी। लोकहित भावना की अभिव्यक्ति जितनी सुन्दरता से साहित्य की इस विधा के माध्यम से हो सकी है, उतनी और किसी साहित्यांग से नहीं क्योंकि जीवन और जगत की प्रतिच्छाया अपनी सम्पूर्णता में उपन्यास में ही चित्रित हो पाती है। काव्य, नाटक आदि अन्य विधाएँ उसके रसात्मक और रमणीय स्थलों का उद्घाटन करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती है। जीवन की जटिलता का जैसा सजीव चित्रण उपन्यास में सम्भव हुआ है, वैसा काव्य, नाटक आदि में न तो किया जाता है और न इसके लिए उनके विधान में कोई स्थान ही होता है। अपनी इसी विषिष्टता के कारण उपन्यास, साहित्य के अन्य अंगों से आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ रहा है।

उपन्यास का मुख्य उद्देष्य जीवन को सम्पूर्णता एवं व्यापकता से प्रस्तुत करना है। इसमें वास्तविक जीवन की अनेक बातों को कल्पना के रंग में रंगकर अत्यंत आकर्षक ढंग से व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य का विविधरंगी जीवन उपन्यास में प्रतिबिम्बित होता है, साथ ही उपन्यास में तत्कालीन युग की झाँकी के दर्षन होते हैं। उपन्यास का सत्य यथार्थ जीवन के सत्य से अधिक सच्चा और स्वाभाविक होता है। इस तरह कहा जा सकता है कि उपन्यास में हम जीवन पढ़ते हैं और वास्तविक जीवन में सच्चे उपन्यास के दर्षन करते हैं।

षिवदानसिंह चौहान लिखते हैं– '' विद्वानों ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य बताया है इसलिए कि इस रूप–विधान के अंतर्गत रचनाकार को आधुनिक युग की संष्लिष्ट वास्तविक के अनुरूप ही विषयवस्तु, कथानक, चरित्रचित्रण और व्यक्तिपात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों और प्रतिक्रियाओं आदि की संष्लिष्ट और मूर्तयोजना करके समग्र जीवन को कलात्मक रूप से प्रतिबिम्बित करने का एक ऐसा सरल साधन या माध्यम प्राप्त हुआ है, जिसके क्षेत्र और संभावनाएँ अपरिसीमित है।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यास जीवन के विविध अनुभवों का निचोड़ है। यह मनोरंजन के साथ–साथ मानव–हृदय का संस्कार भी करता है। इसमें अतीत की प्रतिध्वनि, वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविष्य का संकेत होता है। इन्हीं कारणों से मानव–जीवन का गद्यमय आख्यान या आत्म–प्रकाषन होने वाली यह विधा अन्य सभी साहित्यिक विधाओं से अधिक ग्राह्य एवं अधिक लोकप्रिय है।

अर्थात् निष्चय ही उपन्यास–साहित्य समाज के लिए अमूल्य वरदान सिद्ध हुआ है।

1.3 हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव और विकास :

यह सर्वमान्य है कि गद्य आधुनिक काल की देन है और उपन्यास गद्य साहित्य की देन है। हिन्दी साहित्य में यदि कोई सबसे ऊर्जस्वित, स्फूर्त, जीवन्त और प्राणवती धारा है तो वह उपन्यास है अर्थात् साहित्यिक अभिव्यंजना का सर्वाधिक स्वतंत्र साधन उपन्यास है।

उपन्यास के उद्भव के बारे में अनेक मान्यताएँ हैं।

'' कुछ विद्वान उपन्यास को संस्कृत साहित्य की ' कादम्बरी ', ' दषकुमारचित् ', ' हितोपदेष और ' पंचतंत्र ' से उद्भूत मानते हैं।''

परन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर आज के उपन्यास को इस परंपरा का विकसित रूप कहा जा सके।

कुछ विद्वान अंग्रेजी शब्द ' नोवेल ' की उत्पत्ति भी संस्कृत साहित्य से मानते हैं। ' नोवेल ' का अर्थ है ' नवल ', ' नया '।

हिन्दी –उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला साहित्य से प्राप्त हुई। बंगला में भी उपन्यास रचना की मूल प्रेरणा अंग्रेजी–साहित्य से प्राप्त हुई थी। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, ''हिन्दी में उपन्यास रचना की प्रेरणा प्रत्यक्षतः बँगला और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी से प्राप्त हुई।''

उपन्यास को ' अंग्रेजी साहित्य से उद्भूत मानते हुए नरेन्द्र कोहली ने लिखा है कि ''उपन्यास एक विदेषी विधा है और उसकी परंपरा फ्रांस और रूप में विकसित और सम्पन्न हुई तथा अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी को मिली।''

अर्थात् उपन्यास का विकास भी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और सम्पर्क से हुआ है, यूरोप में उपन्यास–साहित्य का विकास रोमांटिक कथा साहित्य से हुआ। यूरोप का रोमांटिक कथा साहित्य भारतीय प्रेमाख्यानों के अरबों के माध्यम से विष्वयात्रा के समय उनके निष्चित रूप से प्रभावित हुआ होगा। निःसंदेह भारतीय साहित्य में आधुनिक उपन्यासों के बहुत से उपकरण विद्यमान थे, किन्तु 19 वीं शती के हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव और विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणाम स्वरूप हुआ। भारत के जो प्रदेष अंग्रेजी के सम्पर्क में पहले आए उनमें उपन्यासो का प्रचलन अपेक्षाकृत कुछ पहले हुआ। यही कारण है कि बंगला में उपन्यासों की रचना हिन्दी से पहले आरंभ हुई। अतः हिन्दी–उपन्यास–साहित्य पर बंगला के अनेक लेखकों का प्रभाव पड़ा।

आज यह विधा मानव–जीवन के अधिक निकट है जिसमें मानव–जीवन की विषेषताओं तथा उसके विभिन्न ज्ञान–विज्ञानों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य है, आज उपन्यास–साहित्य जीवन के यथार्थ के अत्यंत निकट पहुंच गया है। मानव की आंतरिक पीड़ाओं, कुण्ठाओं, संत्रासों, वर्जनाओं के साथ बाह्य आवष्यकताओं को समग्र रूप से चित्रित करने वाली अन्य कोई ऐसी सषक्त विधा नहीं है।

आधुनिक काल में कथा–साहित्य का पुनरुत्थान कुछ विद्वानों ने सर्वप्रथम इंषाअल्लाहखाँ की ' रानी केतकी की

www.ignited.in

कहानी ' से माना है। यद्यपि इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इसके अतिरिक्त लल्लूलाल कृत ' सिंहासन बतीसी ', ' बैताल पच्चीसी ' इस युग की प्रमुख कृतियाँ हैं। इसके साथ ही फारसी और संस्कृत के आधार ग्रन्थों से अनुवाद प्रस्तुत किए गए। इनमें ' किस्सा तोता मैना,' ' शुकसप्तति,' ' पंचतंत्र ' आदि के माध्यम से नीतिकथाएँ कही गई हैं। किन्तु उपन्यास–कला के विकास की दृष्टि से इसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सका। फिर भी उपन्यास–कला के रूप के विकास में यह निष्चय ही एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है।

इसी समय हिन्दी साहित्य के मंच पर एक अत्यंत प्रभावषाली व्यक्तित्व भारतेन्दुजी का उदय हुआ। उपन्यास–कला की दृष्टि से उनकी मराठी में अनुवादित कृति ' पूर्णप्रकाष ' और चन्द्रप्रभा और मानी जा सकती है, किन्तु यह कृति अपूर्ण रह गई है। फिर भी इस संबंध में डॉ. प्रताप नारायण टंडन का मानना है कि '' भारतेन्दु हरिषचन्द्र ने ' पूर्ण प्रकाष ' और ' चन्द्रमा ' नामक हिन्दी का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास प्रकाषित किया।''

दुर्भाग्य से भारतेन्दु की जीवन–लीला इतनी संक्षिप्त रही है कि वे अपने साहित्यिक जीवन के उत्तरकाल में उपन्यास नाम की नवीन साहित्य विदा की ओर केवल ध्यान ही दे पाए। भारतेन्दु युग के उपन्यासों ने पाठकों का खूब मनोरंजन किया। उनकी कौतूहल–वृत्ति को तृप्त किया, साथ ही उन्हें उपदेष भी दिये, जीवन के उच्चतम आदर्षों से परिचित कराया, भले ही कला के साथ कहीं अन्याय हो गया हो और वह उपेक्षित रह गयी हो। आगे प्रेमचन्द के हाथों, कला भी सँवारी गयी और हर तरह से चुस्त, दुरुस्त, कटी–छँटी यथार्थ की भूमि पर खड़ी रहने वाली कथावस्तु सामने आई।

अर्थात् हिन्दी–उपन्यास के आरंभिक काल में उपन्यास के क्षेत्र में चमत्कारप्रियता एवं मनोरंजन की प्रवृत्ति ही क्रियाषील रही। जन–जीवन एवं उपन्यास के बीच बहुत बड़ी खाई थी। नवचेतना के उदय तथा सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के द्रुत परिवर्तन के उस युग में उपन्यास बेहद पिछड़ा जा रहा था। समाज का स्वरूप, राजनीतिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था, नैतिक परंपराएँ सभी इतनी तेजी से बदल रहीं थीं कि उनके साथ कदम मिलाकर चलना किसी साधारण साहित्यकार के बस की बात नहीं थी। इस युग में किसी ऐसे प्रबुद्धचेतना प्रभावषाली साहित्यकार की आवष्यकता थी जो जनजीवन और साहित्य के बीच की खाई को पाट देता। ऐसे समय में ही प्रेमचन्द का अभ्युदय हुआ। प्रेमचन्द ने उपर्युक्त युगान्तकारी कार्य का बड़ी सफलता से संपादन किया। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम उपन्यास के क्षेत्र में अनावष्यक आदर्षवादिता का बहिष्कार किया। इस तरह '' हिन्दी–उपन्यासों में नया मोड़ देने वाले प्रेमचन्द अपने युग के ही नहीं हिन्दी के सवोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं।''

हिन्दी–उपन्यास का कालविभाजन सामान्यतः युगप्रवर्तक प्रेमचन्द को आधार बनाकर किया जाता है। प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यास और प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास। स्वंय प्रेमचन्द युग जिसमें उपन्यास ने अपने नये रूपों को आकार दिया तथा स्वातंत्रयोत्तर उपन्यास ने भी।

अर्थात् निम्नलिखित काल खण्डों में विभक्त कर उसका समुचित अध्ययन किया जा सकता है।

– **पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यास**

– **प्रेमचन्द युगीन उपन्यास**

– **प्रेमचन्दोत्तर स्वाधीनता पूर्व उपन्यास**

– **स्वातंत्रयोत्तर उपन्यास**

1.4 पूर्व–प्रेमचन्द युगीन उपन्यास :

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप सर्वप्रथम प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है, या हिन्दी–उपन्यास का वास्तविक विकास प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए। हिन्दी में उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को सही रूप में सबसे पहले प्रेमचन्द ने ही पहचाना। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी–उपन्यासों में विषय और उद्देष्य की दृष्टि से कुछ वैविध्य रहा है, पर वास्तविक गरिमा को प्राप्त करने में असमर्थ है। प्रेमचन्द के आगमन तक इसी प्रकार के उपन्यासों का स्वरूप हिन्दी में दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द ने उपन्यास–साहित्य को नयी दिषा दी, दिषा ही नहीं दी उसे उत्कर्ष पर पहुँचा दिया।

प्रेमचन्द ने उपन्यास के क्षेत्र में मानो एक युग स्थापित किया और इस युग के कथा–साहित्य को काफी प्रभावित भी किया अतः प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों को पूर्व प्रेमचन्द उपन्यास कहना केवल काल को ही नहीं, बल्कि विकास के सोपान का और उस सोपान की कुछ विषिष्ट प्रवृत्तियों का परिचायक है। इसी प्रकार प्रेमचन्द युग या प्रेमचन्दोत्तर युग कहना भी उपन्यास की दो विषिष्टधाराओं का द्योतन करता है। अर्थात् प्रेमचन्द बीच में स्थित होकर अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती उपन्यास–साहित्य के मानदंड रूप में दिखाई देते हैं।

पूर्व प्रेमचन्द युग के सम्पूर्ण औपन्यासिक कृतित्व में उद्देष्य की दृष्टि से हमें दो प्रमुख धाराओं का प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। एक धारा में ' उपदेष की प्रधानता ' है दूसरी में ' मनोरंजन ' मुख्य उद्देष्य है। इस मनोरंजन–प्रधान उपन्यासों को कई नामों से जाना जाता है। इसमें तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, डकैती, प्रेम आदि घटनाओं का कल्पनात्मक वर्णन रहता है। इनका उद्देष्य सिर्फ पाठकों का मनोरंजन करना ही है ये उपन्यास 'मनोरंजन करना ही है ये उपन्यास ' मनोरंजन प्रधान ' या कल्पनाप्रधान ' के रूप में स्वीकृति है।

जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रष्न है इस युग में इन उपन्यासों की संख्या प्रायः नगण्य मानी जाती है। वस्तुतः जो उपन्यास इस युग में रचे गए, उनमें ऐतिहासिक उपन्यास के नाम पर तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी और प्रेम–प्रसंगों की अवतारणा ही विषेष रूप से की गई।

पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यास घटना चमत्कार के द्वारा मात्र मनोरंजन प्रदान करते थे या कोई उपदेष देना चाहते थे, उस समय जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी, ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास लिखे गये किन्तु ये सभी घटना चमत्कार पर आधारित थे, और घटना–चमत्कार पर आधारित रहने वाला उपन्यास जीवन–यथार्थ की चिंता कम करता है।

दूसरी ओर उपदेष–प्रधान उपन्यास हैं, उनका एक निष्चित अंत होता है और उसी अंत तक कथा आकर रूक जाती है। उसी अंत के लिए समग्र कथा आयोजित होती है,

उपदेष अति स्पष्ट होता है। लेखक अपनी ओर से टिप्पणियाँ भी करता है। उपदेष–प्रधान कथाओं की सारी घटनाएँ मनोरंजनात्मक होती है, किन्तु उनका नियोजन किसी उपदेष के लिए होता है।

इस प्रकार पूर्व प्रेमचन्द युग में तीन प्रकार के उपन्यास दिखाई पड़ते हैं–

1) शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास।

2) उपदेष प्रधान उपन्यास।

3) ऐतिहासिक उपन्यास।

1.4.1 शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास :

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास में तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यास लिखे गये, जिनमें देवकीनन्दन खत्री मुख्य है। इनके तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यास सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। ''कुछ लोगों ने तो सिर्फ ' चन्द्रकान्ता ' पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी यह ऐतिहासिक सत्य है।''

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास का दूसरा रूप जासूसी उपन्यास है, गोपालराम गहमरी इस धारा के प्रमुख लेखक माने जाते हैं। उन्होंने ' जासूस ' नाम का एक अखबार निकाला जिसमें उपन्यास और कहानियाँ प्रकाषित होती रही।

1.4.2 उपदेश प्रधान उपन्यास :

उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास में श्री निवासदास के ' परीक्षा गुरू ' को विषेष ख्याति प्राप्त हुई, इसे हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। इसके अतिरिक्त लज्जाराम महेता के ' आदर्ष दम्पत्ति,' ' आदर्ष हिन्दी,' ' धूर्त–रसिकलाल ' आदि उपन्यास रचनाएँ प्रमुख थीं।

1.4.2 ऐतिहासिक उपन्यास :

इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का भी प्रणयन पर्याप्त मात्रा में हुआ। किषोरीलाल गोस्वामी कृत ' हृदयहारिणी ' ' आदर्षरमणी ' ' तारा ' ' राजकुमारी ' ' रजिया बेगम ' गंगाप्रसाद कृत ' प्रथ्वीराज चौहाण, मथुरा प्रसाद कृत ' नूरजहाँ आदि प्रमुख है।

प्रेमचन्द–पूर्व युग में काफी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये, पर उनमें वास्तविक उपन्यास कला का अभाव रहा है, लेकिन एक बात अवष्य है कि इन सभी उपन्यासों के द्वारा आगे के उपन्यास का मार्ग खुल गया और प्रेमचन्द ने उपन्यास में नया जीवन दिया।

1.5 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास :

हिन्दी–उपन्यासों के विकासक्रम में प्रेमचन्द युग का विषेष महत्व है। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी–उपन्यास–साहित्य को मनोरंजन के स्तर से उठाकर उसे यथार्थ जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया।

प्रेमचन्दजी उन साहित्यकारों में सर्वप्रथम माने जाते हैं, जिनकी दृष्टि महलों की ओर न जाकर सबसे पहले झोपड़ियों की ओर गई। उनके उपन्यासों में शोषित और दलित जनता के प्रति सहानुभूति का पक्ष चित्रित हुआ है। उनके उपन्यासों में जो समस्याएँ उठायी गयी हैं, वे समाज व्यापी है। वे गाँधीवादी आदर्ष प्रणाली, सत्य और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे। पाष्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। '' वस्तुतः प्रेमचन्दजी में आर्यसमाज की तेजस्विता का अद्‌भुत समन्वय था। उनके गतिषील जीवन–दृष्टि के निर्माण में आर्यसमाज, तिलक एवं गाँधी जी की विचारधाराओं का ही योग था।''

प्रेमचन्दजी जनहित के पक्के समर्थक माने जाते हैं। उनका साहित्य जनता का साहित्य था। जनता के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ आस्था थी। '' जनता को समझने वाले, जनता के प्रति सहानुभूति रखने वाले जन–जीवन को अपना जीवन समझने वाले, जनहित के लिए आत्माहुति देने वाले भारत के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी हुए तो हिन्दी–उपन्यास में प्रेमचन्द।''

प्रेमचन्द के समय समाज की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। पराधीनता, जमींदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण। निर्धनता, अषिक्षा, अंधविष्वास, दहेज की समस्या, नारी की दयनीय स्थिति, विधवा समस्या, अस्पृष्यता आदि समस्याएँ समाज में व्याप्त थीं। इन सभी समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यास में स्थान दिया। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1.5.1 सामाजिक उपन्यास :

प्रेमचन्दजी का सर्वप्रथम प्रसिद्ध उपन्यास ' सेवासदन ' है ' यह ' बाजार–ऐ–हुस्न ' उर्दू उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर है। ' सेवासदन ' से ही उनके औपन्यासिक जीवन का ही नहीं अपितु हिन्दी–उपन्यास के नये युग का भी पादुर्भाव हुआ माना जाता है। इनके अन्य उपन्यासों में ' प्रेमाश्रय ' निर्मला ' गबन ' प्रतिज्ञा ' रंगभूमि ' कर्मभूमि ' गोदान ' कायाकल्प ' प्रेमा ' रूठीरानी ' वरदान ' मंगलसूत्र (अपूर्ण), प्रमुख है। इन उपन्यासों के माध्यम से उस युग का सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन साकार हो उठा।

हिन्दी–उपन्यासों में नया मोड़ देने वाले प्रेमचन्द जी अपने युग के ही नहीं हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं। जीवन की वास्तविक समस्याओं का चित्रण, सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण स्वाभाविक, विष्वसनीय एवं मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण कथानक, विभिन्न वर्गो एवं विभिन्न पेषों के पात्रों का यथार्थ चित्रण, पात्रानुरूप एवं स्वाभाविक सजीव संवाद, युग धर्म की सजीवता, सुन्दर सरल परिष्कृत एवं प्रभावोत्पादक बोलचाल की भाषा–षैली, जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं और आदर्षों का महान उद्‌देष्य आदि गुणों की अवतारणा हिन्दी–उपन्यास में सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी की लेखनी द्वारा ही प्रस्तुत हुई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द जी ने ही हिन्दी–उपन्यास को अभिव्यक्ति का सषक्त माध्यम प्रदान किया। हिन्दी के उपन्यासकारों में इनको सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। भाषा के सटीक, सार्थक और व्यंजनापूर्ण प्रयोगों में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं। डॉ. प्रताप नारायण टंडन के शब्दों में ''प्रेमचन्द का अपना एक स्कूल था, जिसका अनुसरण उनके समकालीन एवं उत्तरकालीन अनेक उपन्यासकारों ने किया।''

प्रेमचन्द जी के समकालीन उपन्यासकारों में जयषंकर प्रसाद (कंकाल–तितली) भगवती प्रसाद बाजपेयी (प्रेमपथ, त्यागीमयी, आनाथ पत्नि) वृन्दावनलाल वर्मा (लगन, संगम,

www.ignited.in

कुंडलीचक्र, प्रत्यागत, प्रेम की भेंट) विष्वम्भरनाथ शर्मा 'कौषिक' (माँ, भिखारिणी आदि उल्लेखनीय है।)

1.5.2 ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी भी काल या देष की कोई ऐतिहासिक कथा उपन्यास की शैली पर चित्रित की जाती है। इस प्रकार के उपन्यासों में घटना, चरित्र या घटना–चरित्र पर ध्यान नहीं रखा जाता है। लेखक का मुख्य ध्यान कथा कहने पर रहता है। इन उपन्यासों में इतिहास और उपन्यास के तत्वों का समन्वय होता है। इसमें कल्पना एवं सच्चाई की प्रधानता रहती है। डॉ. सत्येन्द्र के शब्दों में ''ऐतिहासिक उपन्यासों में देषकाल का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। इन उपन्यासों के लेखक की सफलता इस बात पर निहित रहती है कि वे जहाँ तक हो अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करके तात्कालिक परिस्थितियों का बिम्ब ग्रहण करा दे।''

प्रेमचन्द युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की परम्परा में डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा को विषिष्ट स्थान प्राप्त है। जिसमें बुन्देलखण्ड की वीरभूमि का चित्रण किया गया है। मध्ययुगीन भारत में दबे–बिखरे शौर्य का चित्रण, स्थानीय गौरव, स्थानीय रंगत, प्रकृति चित्रण आदि इस उपन्यास की विषेषताएँ मानी जाती है।

इनके अतिरिक्त गोविन्द वल्लभ पंत (सूर्यास्त), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (खवास का ब्याह), निरालाजी (प्रभावती), भगवतीचरण वर्मा (पतन) आदि ने ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में योगदान दिया।

1.5.3 प्रकृतवादी उपन्यास :

हिन्दी में प्रकृतवादी उपन्यास के पीछे यूरोप की प्राकृतवादी यथार्थवादी परम्परा की प्रेरणा को स्वीकार किया जाता है। ''वस्तुतः पष्चिम में ये यथार्थवाद का प्रवर्तन पहले हो चुका था, उसी में से एक और विषिष्ट शाखा फूटकर निकली जिसे 'प्राकृतवाद' का नाम दिया गया। भौतिकवाद और यथार्थवाद की भाँति प्राकृतवाद भी अनात्मवादी दृष्टिकोण है। वह जीवन को एक आत्मनिर्भर व्यापार के रूप में देखता है। प्राकृतवादी साहित्य के अंतर्गत वे कृतियाँ आती हैं जो यथार्थवादी पद्धति एवं सामग्री के द्वारा दार्षनिक प्रकृतिवाद के किसी स्वरूप की स्थापना करती है।''

प्राकृतवाद वस्तुतः यथार्थवाद का ही विस्तार एवं विकास माना जाता है। प्राकृतवाद एक जीवन दर्षन है। प्राकृतवादी उपन्यासकार मानव–जीवन को वैज्ञानिक ढंग से जानने और समझने का प्रयत्न करता है। मनुष्य का प्रत्यक्ष व्यवहार उसकी किसी न किसी आंतरिक यांत्रिकता या बाह्य विवषता का परिणाम होता है, और साहित्यकार इन दोनों को वैज्ञानिक तटस्थता से उद्घाटित करते हैं। इन साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त पाषविक यौनवृत्ति के कृत्सित चित्रों के उद्घाटन का प्रयत्न किया है। पाप और व्यभिचार के कृत्सित चित्रों में ये लेखक रम गए और जीवन के एक अंधकार पक्ष को उभारने में ही इन लेखकों ने अपनी शक्ति का अपव्यय किया है।

प्रकृतवादी की यह प्रवृत्ति प्रेमचन्द जी के सामने ही उभर उठी थी। इस संबंध में प्रेमचन्द जी ने स्वंय लिखा है। ''वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य पशु है। काम और भूख उसकी सहजवृत्तियाँ हैं। उनके अनेक कार्य–कलाप इन्हीं वृत्तियों से प्रेरित और परिचित होते हैं। मनुष्य में पशु–वृत्तियाँ इतनी प्रबल होती जा रही हैं कि अब उसके हृदय में कोमल भावों के लिए स्थान ही नहीं रहा।''

हिन्दी–उपन्यास में प्रकृतवादी उपन्यासकारों की परम्परा में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा 'उग्र' और ऋषभरचरण जैन – इस लेखक त्रयी का उल्लेख किया जाता है। चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतवादी उपन्यासों में ''हृदय की परख, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा और आत्मदाह'' मुख्य हैं। बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उपन्यासों 'चंद हसीनों' के खतूत, दिल्ली का दलाल, बधुआ की बेटी, शराबी आदि में समाज की बुराईयों को, उसकी नंगी सच्चाई को बिना लाग–लपेट के बड़े ही साहस के साथ किन्तु सपाट बयानी में प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों की अष्लीलता एवं अष्टिता उन्हें श्रेष्ठ कला के रूप में परिणत नहीं होने देती और न ही उनका सुधारावादी उद्देष्य पूरा हो पाया। इसी तरह ऋषभचरण जैन ने भी 'उग्र' जी की ही भाँति, तत्कालीन समाज के, वर्जित विषयों पर 'दिल्ली का कलंक, दिल्ली का व्यभिचार, वैष्यापुत्र आदि उपन्यासों की रचना की।

संक्षेप में प्रकृतवादी उपन्यासकारों ने यौन–लिप्सा एवं अप्राकृतिक व्यभिचारों के उद्घाटन तथा चित्रण को ही अपने प्रयत्नों का लक्ष्य बनाया और अपना संतुलन खो दिया। अपने प्रयत्नों में एकान्ततः अंधकार पक्ष के उद्घाटन पर केन्द्रित रखने के कारण हिन्दी के इन उपन्यासकारों का व्यक्तित्व प्रतिभा, अनुभूतियाँ एवं व्यंजनाशक्ति के बावजूद पूर्ण विकास नहीं पा सका।

1.5.4 मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

मनोविज्ञान का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों से ही आरम्भ हो गया था। इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उद्देष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है। इन उपन्यासों में व्यक्ति की सारी अंर्तविरोधी प्रवृत्तियों, जटिल संवेदनाओं, विषम मनःस्थितियों का चित्रण किया जाता है। इन उपन्यासों में ''व्यक्ति के वैयक्तिक इतिहास के आधार पर उसके अवचेतन मन की कुंजी से उसके चारित्रिक रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है।''

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में किसी विषिष्ट पात्र की मनःस्थिति का सूक्ष्मांकन होता है। उनके अंतर्मन के सूक्ष्म तरंगित भावों और विचारों को उपन्यासकार अत्यंत ही सूक्ष्मतापूर्वक शब्दबद्ध करता है। मानव मन की तीन अवस्थाएँ होती हैं, चेतन, अर्धचेतन और अचेतन। अचेतन या अर्धचेतन, अवस्था में मानव की वे सारी इच्छा–आकांक्षाएँ सोई रहती हैं, जो सामाजिक स्वीकृति एवं मान्यता के अभाव में परिपुष्ट नहीं हो पायी हैं, वे प्रच्छन्न रूप में अभिव्यक्ति का प्रयास बराबर करती रहती है, किन्तु उन्हें दमन का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार मनुष्य के मन में एक भीषण संघर्ष, द्वन्द्व अनवरत चलता रहता है। इस दमन के कारण मनुष्य अनेक प्रकार की गुत्थियों तथा कुंठाओं का षिकार हो जाता है। इसके कारण व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, और उसके आचार–व्यवहार में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ आ जाती हैं। अतः मनुष्य जो कुछ करता है, उस व्यक्त कर्म के माध्यम से उसकी अव्युक्त प्रेरणा का अध्ययन आवष्यक है। इसी आधार पर

साहित्य में मनुष्य को जानने–समझने के लिए नई पद्धति – ''मनोवैज्ञानिक पद्धति'' का जन्म हुआ।

प्रेमचन्द युग में जैनेन्द्र जी मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अग्रदूत माने जाते हैं। इनके मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ''परख, सुनीता, त्यागपत्र,'' मुख्य हैं। इन्होंने व्यक्ति मानस की उलझनों एवं सामाजिक जीवन के बीच व्यक्ति की अपनी स्थिति को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया है।

दूसरे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं – इलाचन्द्र जोषी। जोषी जी ने अपने कृतियों में काम–वर्जनाओं के उन्नयन पर बल दिया है। इस युग में इनका प्रथम उपन्यास ''लज्जा'' के नाम से प्रचलित है। इनके उपन्यासों के पात्र दुर्बल एवं मनोग्रंथि पीड़ित हैं, जिसे आज के मध्यम वर्ग की विषेषता मानी जाती है। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' भी इसी युग का मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

हिन्दी–उपन्यास के विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द युग का विषेष महत्व है। प्रेमचन्द की लेखनी के वरदान से एक समग्र जीवन–दृष्टि का उदय हुआ, उपन्यासों में एक अमित विस्तार आया, वह युग जीवन की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम बना। जीवन की विविध समस्याओं के बोध एवं निराकरण की प्रवृत्ति जागी। समाज को नवीन दिषाएँ देने का प्रयत्न हुआ। उपन्यास कला की भूमि यथार्थ के तत्वों से सजाई–संवारी गई और जीवन के यथातथ्य निरूपण के प्रयास हुए।

निष्कर्षतः हिन्दी–उपन्यास–साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी का पर्दापण एक युग–प्रवर्तक के रूप में हुआ। इस युग में सामाजिक उपन्यासों के साथ–साथ ऐतिहासिक, प्रकृतवादी, मनोवैज्ञानिक एवं आँचलिक उपन्यासों (षिव पूजन सहाय का 'देहाती दुनिया') का भी बीजारोपण हुआ। इस तरह ''जो कार्य राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गाँधी ने किया वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ।''

प्रेमचन्द जी ने हिन्दी–उपन्यास को पहली बार साहित्य का दर्जा प्रदान किया। जैनेन्द्र ने उसे आधुनिक बनाया। प्रसाद, कौषिक, उग्र, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला आदि ने भी अपने–अपने ढंग से उसे प्रसिद्धि प्रदान कर परवर्ती उपन्यासकारों का मार्गदर्षन किया।

1.6 प्रेचचंदोत्तर स्वाधीनता–पूर्व उपन्यास :

सन् 1936 ई. हिन्दी–उपन्यास–साहित्य के इतिहास में विषेष महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द युग का अंत हुआ हआ और दूसरे युग का समारम्भ हुआ। प्रेमचन्दोत्तर युग में जो जीवन प्रवृत्तियाँ उभरी उनका पूर्वाभास बहुत हद तक प्रेमचन्द जी की अंतिम कृतियों में मिलने लगा था, किन्तु प्रेमचन्द जी के बाद विषय–वस्तु और षिल्प–षैली दोनों के प्रति नये लेखकों ने विद्रोह किया। उपन्यास स्थूल जगत को छोड़ मनोजगत की ओर प्रवृत्त हुआ। प्रायः सम्पूर्ण साहित्य की प्रवृत्ति इस युग में स्थूल से सूक्ष्म की ओर ही थी।

प्रेमचन्द जी ने भावी उपन्यासों के संबंध में भविष्यवाणी करते हुए कहा था – ''यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन–चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई–बड़ाई का फैसला उन कठिनाईयों से किया जाएगा जिन पर उसने विजय पाई हो। हाँ वह चरित्र इस ढंग से लिखा जाएगा कि उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखलाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी देष भक्त का या किसी बड़े आदमी का हो पर उसका आधार यथार्थ पर होगा। तब यह काम सबसे कठिन होगा, जितना अब है क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिन्हें भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।''

प्रेमचंदोत्तर स्वाधीनता–पूर्व युग के तमाम उपन्यासकारों एवं कृतियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

1.6.1 सामाजिक उपन्यास :

इसे समस्या–प्रधान उपन्यास के नाम से भी जाना जाता है। प्रेमचन्द जी के बाद, आलोच्यावधि में ऐसे उपन्यासकारों की लंबी परम्परा है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को लेकर चले।

इन सामाजिक उपन्यासों में 'नारी' (सियाराम शरण गुप्त), 'महाकाल' (अमृतलाल नागर), 'सितारों का खेल, 'गिरती दिवारें,' (उपेन्द्रनाथ अष्क), 'घरोंदे, विषदमठ' (रांगेय राघव) आदि प्रमुख हैं।

इन उपन्यासों में समाज की अनेक समस्याओं को उठाया गया है। अनमेल–विवाह, बहू–विवाह, जाति–पाति, तलाक, अछूतोद्धार, किसानों का शोषण आदि समस्याओं का उल्लेख है।

1.6.2 ऐतिहासिक उपन्यास :

आलोच्य, युग में डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा का ('मुसाहिब जू, झाँसी की रानी') राहुल जी का (सिंह सेनापति एवं जय भौद्धेय), यषपाल का (दिव्या), जयषंकर प्रसाद की (इरावती), आचार्य चतुरसेन शास्त्री का ('मंदिर की नर्तकी, रक्त की प्यास) आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है।

1.6.3 मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रणेता जैनेन्द्र जी हैं। इनके उपन्यास ''त्यागपत्र'' और ''कल्याणी'' इस युग में प्रकाषित हुए हैं।

जैनेन्द्र कुमार के बाद हैं इलाचन्द जोषी। जोषी जी एकदम आब्जैक्टिव आत्मनिरपेक्ष कलाकार हैं। ऐसा माना जाता है कि ''मनोवैज्ञानिक विष्लेषण की दिषा भले ही जैनेन्द्र ने दिखाई हो, पथ की प्रषस्ति का श्रेय इलाचन्द जोषी को है। इस तरह हिन्दी–उपन्यास में चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विष्लेषण की प्रणाली का सूत्रपात जैनेन्द्र कुमार ने नहीं इलाचन्द जोषी ने किया है।''

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का (षेखर : एक जीवनी), भगवती प्रसाद वाजपेयी के (पिपास, निमंत्रण) आदि भी उल्लेखनीय हैं।

1.7 स्वातंत्रयोत्तर उपन्यास :

सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कुछ समस्याएँ समाज में फैल चुकी थीं जैसे कुरीतियाँ, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, कुण्ठा, निराषा आदि इसके कारण उपन्यास क्षेत्र में नया मोड़ आया।

इस नये मोड़ में डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. प्रताप नारायण टंडन आदि मुख्य हैं।

www.ignited.in

1.7.1 सामाजिक उपन्यास :

''सामाजिक उपन्यासों का उद्देष्य मात्र समस्याओं का चित्रण ही नहीं होता, वरन् यह एक ऐसा प्रस्तुतिकरण है जिसके माध्यम से पाठक समाज में होने वाले कार्य–व्यापार के औचित्य–अनौचित्य को भलीभाँति परख सकें।''

1.7.2 ऐतिहासिक उपन्यास :

स्वातंत्रयोत्तर ऐतिहासिक उपन्यासों में चतुरसेन शास्त्री कृत ('वैषाली की नगर वधू, देवांगना, सोना और खून') वृन्दावनलाल वर्मा के ('मृगनयनी, अहिल्याबाई, भुवन विक्रम, माधवजी सिंधिया'), रांगेय राघव के ('मूर्दों का टीला, अंधेरे के जुगनू), हजारी प्रसाद द्विवेदी (चारूचन्द्र लेख, पुनर्नवा), अमृतलाल नागर कृत ('सुहार के नूपुर, मानस का हंस') इन उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन बड़े ही मार्मिक एवं कलात्मक ढंग से किया गया है।

1.7.3 आँचलिक उपन्यास :

आँचलिक उपन्यासों में किसी क्षेत्र विषेष में रहने वालों की उन विषेषताओं का अंकन किया जाता है जो उसे निजता प्रदान करते हैं, और जिनके कारण वह क्षेत्र विषेष अन्य क्षेत्रों से भिन्न और विषिष्ट समझा जाता है। इन उपन्यासों में किसी पिछड़े हुए अज्ञात अंचल या किसी अपरिचित अर्धपरिचित जाति के जीवन को पूरी सहृदयता के साथ चित्रित करने की परंपरा रही है। आँचलिक उपन्यासों के संबंध में डॉ. नगेन्द्र जी ने लिखा है – ''जिन उपन्यासों को आँचलिक कहा जाता है उनमें गाँव की धरती, खेत–खलिहान, नदी–नाले, पषु–पक्षी, हल–बैल, भाषा, गीत–त्यौहार आदि इनके बीच रहने वाले व्यक्तियों के साथ समवेत में वाणी पाते हैं।''

आँचलिक उपन्यास का उद्देष्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अंचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना है। इसलिए आँचलिक उपन्यासकार के लिए आवष्यक है कि वह उस अँचल या उस जाति के जीवन में घुला–मिला हो जिसका उसे चित्रण करना।

''आँचलिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फणिष्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' में मिलता है। परन्तु नागार्जुन के 'बलचनमा' को प्रथम आँचलिक उपन्यास माना जाता है।

आलोच्य युग के आँचलिक उपन्यासों में फणीष्वर नाथ रेणु का 'मैला आँचल, परती परिकथा, नागार्जुन का (बलचनमा, दुःखमोचन, वरूण के बेटे, बाबा बटेसरनाथ), रांगेय राघव का ('कब तक पुकारू'), भैरव प्रसाद गुप्त कृत ('सती मैया का चौरा'), राही मासूम रजा का ('आधा गाँव'), रामदरष मिश्र कृत ('पानी के प्राचीर'), हिमांषु श्री वास्तव का ('रथ के पहिये') आदि हैं। इन सभी उपन्यासों में पिछड़े क्षेत्र विषेष के जीवन को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

1.7.4 मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

स्वतंत्रयोत्तर युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेन्द्र का ('सुखदा, व्यतीत, जयवर्धन,'), इलाचन्द जोषी के ('मुक्तिपथ, जिप्सी'), अज्ञेय जी का ('नदी के द्वीप, 'अपने–अपने अजनबी'), धर्मवीर भारती का (गुनाहों का देवता), मन्नू भंडारी का ('आपका बंटी'), राजेन्द्र यादव का ('षह और मात') आदि हैं।

1.8 आधुनिक बोध के उपन्यास और शिवानी :

कुछ विद्वानों ने स्वातंत्रयोत्तर उपन्यासों को 'आधुनिकता–बोध' के रूप में स्वीकार किया है। साठोत्तरी उपन्यास 'आधुनिकतावादी' विचारधारा से विषेष रूप से प्रभावित हैं।

औद्योगीकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यंत्रीकरण तथा अस्तित्ववादी पाष्चात्य विचारधाराओं के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई उसका प्रतिबिम्ब साहित्य की अन्य विधाओं के सामन हिन्दी–उपन्यास पर भी पड़ा। इन स्थितियों के कारण व्यक्ति की अपनी पहचान और व्यक्तित्व खो गया। इस खोए हुए व्यक्तित्व की 'खोज प्रक्रिया' का नाम आधुनिकता है।

आधुनिकता के संबंध में डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के मत तर्कसंगत प्रतीत होते हैं – '' वास्तव में वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप निर्मित मानव–मन और परिवर्तित मानव–बोध तथा युग–बोध का ऐतिहासिक परम्परा के साथ समन्वय स्थापित कर जीवन के नये क्षितिज स्पर्ष करना ही आधुनिकता है।''

प्रगतिषील और मूल्यावादी विचारक आधुनिकता–बोध को मानवता के भविष्य–निर्माण के संघर्ष में बाधक मानते हैं। उनके अनुसार आधुनिक यंत्र दानव (यांत्रिकीकरण) के समक्ष अपनी हीनता और व्यर्थता के बोध से आक्रॉंत मनुष्य बेहतर जीवन–निर्माण के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इसलिए विसंगति, विडंबना, व्यर्थता, अजनबीपन, नैराष्य, कुण्ठा, संत्रास आदि को आधुननिकता–बोध का पर्याय मान लेना उचित नहीं है। वर्तमान औद्योगिक सभ्यता के अंतर्गत मनुष्य का पदार्थीकृत होना उसकी स्थिति है। निराषा, ऊब, ग्लानि, व्यर्थता–बोध आज का जीवन सत्य है, यह स्वीकार कर लेने से मनुष्य की संकल्प शक्ति का ह्रास होता है और वह नियति का दास बनकर रह जाता है इसलिए आधुनिक प्रगतिषील विचारक इस 'आधुनिकता–बोध' के स्थान पर 'यथार्थ–बोध' को महत्व देते हैं। इस संबंध में 'मुक्तिबोध' जी का मत हैं – ''अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करना आधुनिक भावबोध के अंतर्गत है। आधुनिक भावबोध के अंतर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी दत्तचित हों तथा हम वर्तमान स्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें।''

आधुनिकता–बोध और यथार्थ–बोध दोनों का एक ही उद्देष्य 'स्वतंत्रता की खोज करना ' है। दोनों एक दूसरे के पूरक माने जा सकते हैं। आधुनिकता–बोध समस्या का ज्ञान है तो यथार्थ–बोध उस समस्या, उस अन्याय के विरूद्ध बुलन्द आवाज है।

स्वातंत्रयोत्तर युग में नारी–जागरण एवं स्त्री–षिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। इसके परिणाम स्वरूप उपन्यास ही नहीं साहित्य के हर क्षेत्र में समृद्धि प्रदान करने वाली महिला रचनाकारों की एक सषक्त पीढ़ी का उदय हुआ।

स्वातंत्रयोत्तर युग की महिला उपन्यासकारों के संबंध में डॉ. रामचन्द तिवारी जी ने लिखा है कि – ''स्वतंत्रता–प्राप्ति

www.ignited.in

के बाद नारी–जागरण और स्त्री–षिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप हिन्दी–कथा रचना के क्षेत्र में महिला रचनाकारों की एक सषक्त पीढ़ी का उदय हुआ। षिवानी, शषिप्रभा, कृष्णा सोबती, दीप्ति खण्डेलवाल, मन्नू भंडारी, ऊषा पियंबदा, राजी शेठ, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, दिनेष नंदिनी, डालमिया, निरूपमा सोबती, महेरून्निसा, चन्द्रकान्ता, कान्ता भारती, कुसुम कुमार मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, सूर्यवाला आदि महिला साहित्यकारों ने समकालीन उपन्यास लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उपन्यासकार षिवानी के संबंध में उन्होंने लिखा है कि – ''षिवानी'' ने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक उपन्यास लिखे हैं। ये मनोरंजक कथा गढ़ने से सिद्धहस्त हैं। उनके उपन्यासों में रहस्य रोमांच, भावुकता, स्वच्छंद कल्पना और मनोरंजन का पुट उन्हें पठनीय बनाता है।''

समय की विषत परिस्थितियों के फलस्वरूप षिवानी जी जैसी सषक्त उपन्यासकार का उदय हुआ। उन्होंने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर लिखा। तत्कालीन समाज की विभिन्न समस्याओं, पारिवारि विघटन, छुआ–छूत, वैधव्य, दहेज, रखैल–प्रथा, वैष्यावृत्ति, अवैध मातृत्व, अंतर्जातीय विवाह, अनाचार भ्रष्टाचार, धार्मिक पाखण्ड आदि को अपने उपन्यासों का वर्ण्य विषय बनाया।

षिवानी जी ने बड़े और लघु दोनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की है। इन्होंने पच्चीस उपन्यासों की रचना की है। सभी उपन्यास 'आधुनिकता–बोध' के ज्वलंत उदाहरण कहे जा सकते हैं। समाज की हर छोटी बड़ी समस्या को इनके उपन्यासों में स्थान मिला है।

लघु उपन्यासकारों में षिवानी महत्वपूर्ण हैं। सन् 1970 ई. में लघु उपन्यासों की रचना की ओर प्रवृत्त हुई हैं। इनका प्रथम लघु उपन्यास विषकन्या है जो सन् 1970 ई. में प्रकाषित हुआ। हिन्दी–उपन्यास का भविष्य उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। आज इस क्षेत्र में लघु उपन्यास एवं षिल्प–प्रधान उपन्यासों के साथ–साथ हिन्दी–उपन्यासों में एक साथ आँचलिक, अंतर्प्रान्तीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन–परिवेष के चित्र को उभारा जा रहा है, ऐसे उपन्यासकारों में षिवानी जी महत्वपूर्ण रही हैं।

षिवानी जी उन उपन्यासकारों की कोटि में नहीं आई हैं जिन्हें आलोचक बड़ी आसानी से या तो किसी बाद के कटघरे में बंद कर देता है, या चुटकी में उड़ा देता है। षिवानी जीवंत परिवेष और सौन्दर्य–पारखी रही हैं। उनके उपन्यासों में मार्मिक संवेदना और व्यापक दृष्टि है। षिवानी जी ने महिला कथाकारों में अपना अलग स्थान बनाया है। उनके उपन्यासों में कुमाऊँ की सुकुमारता, बंगाल की भावुकता, गुजरात की कुलीनता और लखनऊ की नजाकत झलकती है। उन्होंने यथार्थ को धकेल केवल कल्पना के मसिपात्र में लेखनी नहीं डुबाई। वह अपने समय की एक ईमानदार और सफल तथा सर्वाधिक लोकप्रिय लेखिक थीं।